सती प्रथा और जैनधर्म

रञ्जन कुमार

(शोधछात्र पार्श्वनाथ : विद्याश्रम शोध-संस्थान, वाराणसी)

सती होने का अर्थ है विधवा स्त्री का अपने पति की चिता में जीवित जल जाना। इसे सहमरण, सहगमन, अनुमरण या अन्वारोहन आदि नामों से भी जाना जाता है। इस प्रक्रिया में दो स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं—पहली स्थिति में विधवा को उसकी इच्छा के विरुद्ध चिता में प्रवेश करने के लिए विवश किया जाता हो और दूसरी स्थिति में विधवा स्वेच्छापूर्वक सती होती हो। प्राचीनकाल में सती प्रथा को साधारण सी घटना माना गया था। जहाँ हिन्दू-धर्म में सती प्रथा से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख बहुतायत से है, वहीं जैन धर्म में यह आपवादिक घटनाओं के रूप में उल्लिखित हुआ है।

अगर हम हिन्दू धर्म-ग्रंथों पर दृष्टिपात करें तो हमारे समक्ष सती प्रथा का वर्णन करने वाले तीन तरह के ग्रन्थ प्रस्तुत होते हैं।

(क) प्रथम कोटि में वे हिन्दू-धर्मग्रन्थ आते हैं जो सती प्रथा का समर्थन नहीं करते हैं।[1]

(ख) दूसरी कोटि में सती-प्रथा का अस्पष्ट ढंग से समर्थन करने वाले हिन्दू-धर्म-ग्रन्थ आते हैं।[2]

(ग) तीसरी कोटि में सती-प्रथा का स्पष्ट रूप से समर्थन करने वाले ग्रन्थ आते हैं।[3]

लेकिन सती-प्रथा के सम्बन्ध में जैनधर्म से सम्बन्धित ग्रन्थों में इस तरह का विभेद नहीं मिलता है। पहली बात तो यह कि जैनागमों में इस प्रथा का अभाव ही है, लेकिन अगर कुछ है भी तो उसे अपवाद के तौर पर ही लिया जा सकता है।

'निशीथचूर्णि' में लिखा गया है कि सोपारक के पाँच सौ व्यापारियों को कर नहीं देने के कारण राजा ने उन्हें जीवित जला देने का आदेश दिया। उक्त आदेशानुसार उन पांच-सौ व्यापारियों को जिन्दा जला दिया गया था और उन व्यापारियों की पत्नियाँ भी उनकी चिताओं में जल गई थी।[4] इसी प्रकार का एक विवरण 'प्रश्नव्याकरण' में भी मिलता है। इस ग्रन्थ के अनुसार "चालुक्य देश की नारियां पति की मृत्यु के बाद आत्मदाह करती थी।"[5] परन्तु जैनाचार्य इसका समर्थन नहीं करते हैं।

---

१. भारद्वाज गृह्यसूत्र १, २

२. अथर्ववेद १८, ३, १, २ कौशिक गृह्यसूत्र ५, ३, ६ विष्णु धर्मसूत्र, २५/१४, बृहस्पति-स्मृति, २५/११, व्यास स्मृति

३. मिताक्षरा, ८६, बृहत्पाराशर स्मृति, दक्षस्मृति, पाराशर स्मृति, ३२, ३३ जीवानन्द, १, पृ० ३९५

४. निशीथचूर्णि, भाग २ पृ० ५९-६०, निशीथचूर्णि, भाग ४ पृ० १४, ५. प्रश्नव्याकरण २/४/७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनः इस आपवादिक उल्लेख के अतिरिक्त हमें जैन साहित्य में इस प्रकार के उल्लेख नहीं मिलते हैं। "महानिशीथ" में एक विवरण मिलता है जिसके अनुसार किसी राजा की विधवा कन्या सती होना चाहती थी, किन्तु उसके पितृकुल में इस प्रथा का प्रचलन नहीं था। अतः अंत में उसने अपना यह विचार त्याग दिया।[1] इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनाचार्यों ने पति की मृत्यु के बाद स्वेच्छापूर्वक देहत्याग को अनुचित माना है और इस प्रकार के मरण को 'बाल-मरण' या 'लोकमूढ़ता' कहा है। सती प्रथा का धार्मिक समर्थन जैन आगम साहित्य और उसकी व्याख्याओं में कहीं नहीं मिलता है।

'आवश्यक चूर्णि' में दधिवाहन की पत्नी एवं चन्दना की माता आदि के कुछ ऐसे उदाहरण अवश्य मिलते हैं जिनमें ब्रह्मचर्य की रक्षा के निमित्त देह-त्याग किया गया है।[2] परन्तु यह देह-त्याग सती-प्रथा की अवधारणा से अलग है। जैनधर्म यह नहीं मानता है कि मृत्यु के बाद पति का अनुगमन करने से अर्थात् जीवित चिता में जल जाने से पुनः स्वर्गलोक में उसी पति की प्राप्ति होती है[3] लेकिन हिन्दू धर्म में ऐसा विश्वास किया जाता है। जैन धर्म अपने कर्म सिद्धान्त के प्रति आस्था रखता है और यह मानता है कि पति-पत्नी अपने-अपने कर्मों और मनोभावों के अनुसार ही विभिन्न योनियों में जन्म लेते हैं। यद्यपि परवर्ती जैन-कथा-साहित्य में हमें ऐसे उल्लेख मिलते हैं जहाँ एक भव के पति-पत्नी आगामी भवों में जीवन-साथी बने, किन्तु इसके विरुद्ध भी उदाहरणों की जैन-कथा-साहित्य में कमी नहीं है।

अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि धार्मिक आधार पर जैन-धर्म सती-प्रथा का समर्थन नहीं करता। जैन-धर्म के सती-प्रथा के समर्थक न होने के कुछ सामाजिक कारण भी हैं। व्याख्या साहित्य में ऐसी अनेक कथाएँ वर्णित हैं जिनके अनुसार पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी न केवल पारिवारिक दायित्व का निर्वाह करती थी, अपितु पति के व्यवसाय का संचालन भी करती थी। अनुत्तरोपपातिक में एक उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार एक सार्थवाह की पत्नी विधवा होने पर स्वयं व्यापार का संचालन करती थी।[4] उत्तराध्ययन में लिखा हुआ है कि पुत्रहीना अथवा पुत्र के वयस्क न होने की स्थिति में विधवा रानी मंत्री के माध्यम से राज्य कार्य का संचालन करती थी।[5]

इसके अतिरिक्त जैनागमों और उसकी व्याख्याओं में ऐसे अनेक सन्दर्भ मिलते हैं जहां कि विधवा भिक्षुणी बन जाती थी। उदाहरणस्वरूप मदनरेखा के पति की हत्या उसके भाई ने कर दी। इस घटना से दुःखी होकर वह भिक्षुणी बन गई।[6] इसी तरह दुःखी या किसी तरह की विरक्ति के कारण विधवाएँ सती न होकर भिक्षुणी बन जाती थीं। मदनरेखा की ही तरह यशभद्रा,[7] पद्मावती[8] आदि स्त्रियों का उदाहरण हमारे सामने प्रस्तुत होता है। 'ज्ञाताधर्म कथा' में पोट्टिला[9] तथा सुकुमालिका[10] के भिक्षुणी बनने के प्रसंग का वर्णन मिलता है।

यद्यपि जैन परम्परा में ब्राह्मी,[11] सुन्दरी[12] वसुमती[13] राजमती[14] द्रौपदी[15] पद्मावती[16] आदि

---

१. महानिशीथ, पृ० २९, वि० द्र० जैनागम साहित्य में भारतीय समाज पृ० २६९
२. आवश्यकचूर्णि, भाग १, पृ० ३१८
३. पाराशरस्मृति, ३२, ३३
४. अनुत्तरोपपातिक, ३१९
५. उत्तराध्ययनसूत्र, १३
६. उत्तराध्ययन निर्युक्ति, पृ० १३६-१४०
७. आवश्यक निर्युक्ति, १२८३
८. आवश्यक चूर्णि भाग २, पृ० १८३
९. ज्ञाता धर्मकथा, १/१४
१०. ज्ञाताधर्मकथा, १/१६
११. श्री सोलह सती, पृ० १-५
१२. श्री सोलह सती पृ० ६-१२
१३. श्री सोलह सती पृ० १३-६४
१४. श्री सोलह सती पृ० ६५-९१
१५. श्री सोलह सती पृ० १८२
१६. श्री सोलह सती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोलह स्त्रियों को सती कहा गया है और तीर्थंकरों के नाम स्मरण के साथ-साथ इन सोलह सतियों का स्मरण किया जाता है। अब यहाँ प्रश्न यह है कि जब जैनधर्म में सती प्रथा को प्रश्रय नहीं दिया गया, तो इन सतियों को इतना आदरणीय स्थान क्यों प्रदान किया जाता है ? प्रत्युत्तर में यही कहा जा सकता है कि उनका आचरण एवं शीलरक्षण के जिन उपायों का इन्होंने आलम्बन लिया, उसी के कारण इन्हें इतना आदरणीय स्थान प्रदान किया जाता है। इन्हें सती इसीलिए भी कहा जाता है क्योंकि इन स्त्रियों ने अपने शील की रक्षा हेतु आजीवन अविवाहित जीवन बिताया था, पति की मृत्यु के पश्चात् भी अपने शील को सुरक्षित रख सकीं। वर्तमान में जैन साध्वियों के लिए 'महासती' शब्द का प्रयोग किया जाता है, उसका मुख्य आधार शील का पालन है।

जैन आगमिक व्याख्याओं और पौराणिक रचनाओं के पश्चात् जो प्रबन्ध-साहित्य लिखा गया उसमें सर्वप्रथम सती-प्रथा का जैनीकरण रूप हमें देखने को मिलता है। 'तेजपाल-वस्तुपाल-प्रबन्धकोश' में उल्लिखित है कि तेजपाल और वस्तुपाल की मृत्यु के उपरान्त उनकी पत्नियों ने अनशनपूर्वक अपने प्राण का त्याग किया था।[1] यहाँ पति की मृत्यु के पश्चात् शरीर-त्यागने का उपक्रम तो है, किन्तु उसका स्वरूप सौम्य बना दिया गया है। वस्तुतः यह उस युग में प्रचलित सती-प्रथा की जैनधर्म में क्या प्रतिक्रिया हुई थी, उसका सूचक है।

अब यहाँ एक विचारणीय प्रश्न है कि सती जैसी प्रथा का इतना कम प्रचलन जैनधर्म में क्यों रहा ? इस बारे में तो यही कहा जा सकता है कि जैन भिक्षुणी संघ इसके लिए उत्तरदायी रहा। क्योंकि भिक्षुणी बनी स्त्रियाँ भिक्षुणी संघ को अपना आश्रयस्थल समझती थीं। जैन भिक्षुणी संघ उन सभी स्त्रियों के लिए शरणस्थल होता था जो विधवा, परित्यक्ता अथवा आश्रयहीना होती थी। जब कभी भी ऐसी नारी पर किसी तरह का अत्याचार किया जाता था जैन भिक्षुणी संघ उनके लिए कवच बन जाता था। क्योंकि भिक्षुणी संघ में प्रवेश करने के बाद स्त्रियाँ पारिवारिक उत्पीड़न से बचने के साथ ही साथ एक सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करती थीं। आज भी ऐसी बहुत सी अबलाएँ हैं जो कुरूपता, धनाभाव तथा इसी तरह की अन्य समस्याओं के कारण अविवाहित रहने पर विवश हैं ऐसी कुमारी, अबलाओं के लिए जैन भिक्षुणी संघ आश्रय स्थल है। जैन भिक्षुणी संघ ने नारी गरिमा और उसके सतीत्व की रक्षा की जिसके कारण सती-प्रथा जैसी एक कुत्सित परम्परा का जैनधर्म में अभाव रहा।

इसी सन्दर्भ में यह विचार कर लेना भी उपयुक्त जान पड़ता है कि सती जैसी प्रथा का प्रचलन हिन्दू धर्म में क्यों इतने व्यापक पैमाने पर चलता रहा। यहाँ यही कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्म में जैनधर्म की तरह कोई भिक्षुणी संघ नहीं रहा होगा ? क्योंकि अगर इस तरह की संस्था हिन्दू धर्म में भी कायम रहती तो निस्संदेह इतने अधिक सती के उदाहरण हिन्दू परम्परा में नहीं मिलते।

○○

१. प्रबन्धकोश, पृ० १२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org